© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN : 2348 - 5612 | Volume : 04 , Issue : 10 | October – December 2017

जीवन और साहित्य में रस का स्थान एवं महत्व

सीमा, रिसर्च स्कॉलर

परिचय : बाह्य दृश्य जगत और मनुष्य के अदृश्य अंतर्जगत में शेष सृष्टि के साथ उसके सम्बंध-असम्बंध या विरोध को लेकर किये जानेवाले कर्म-व्यापार तथा होनेवाली या की जानेवाली क्रिया-प्रतिक्रिया की समष्टि चेतना का नाम है जीवन. इस द्वंद्वमय जीवन के दो पहलू हैं– सुख और दुख. संसार के विकास, विस्तार और परिवर्तन के साथ उक्त दो मूल प्रवृत्तियों का भी नाना रूपों में विकास हुआ, भावों या मनोवेगों के अनेक रूप दीख पड़े. लेकिन रहे वे सुख-दुखावस्था के रूप में ही.

साहित्य, विशेषतः दृश्राव्य नाटय़, श्रव्य-काव्य तथा कथा(कहानी तथा उपन्यास) में प्रतिबिम्बित होता है हमारा जीवन ही, परंतु प्राकृत सुख- सुख के रूप में अनुभूत न होकर वहां उसकी प्रतीति 'रस' के रूप में होती है. रति, हास, उत्साह और विस्मय नामक भाव सुखात्मक हैं और क्रोध, शोक भय तथा जुगुप्सा दुखात्मक भाव हैं, परंतु इनसे निष्पन्न होनेवाली प्रतीति समान रूप से कहलाती है रस ही. क्रमशः ये रस हैं शृंगार, हास्य, वीर, अद्भुत, रौद्र, करुण, भयानक तथा वीभत्स. नवां रस शांत रस कहा गया है, जिसके स्थायी भाव के विषय में विद्वानों में मतभेद है. कोई 'शम' तो कोई 'निर्वेद' तो कोई 'तृष्णाक्षय' को उसका स्थायी भाव बताता है. कालांतर में काव्यशात्रियों ने कुछ और रसों की भी कल्पना कर डाली. जिसमें से भक्ति तथा वत्सल रस ही विशेषतः मान्य हो सके.

साहित्य और जीवन : साहित्य में जीवन ही प्रतिबिम्बित होता है, इसका सीधा-सरल अर्थ है कि रचयिता अपनी रचना में देश, काल, परिस्थिति, घटना, पात्र, पात्र का चरित्र, उसकी वेश-भूषा,

क्रिया-कलाप आदि सबकी योजना करता है ताकि वर्ण्य विषय का पूर्ण चित्र उभर कर सामने आ सके, प्रत्यक्षवत् प्रतीत हो सके. लेकिन यह चित्रण हू-ब-हू वही नहीं होता जो घटित हुआ है. रचनाकार किसी पौराणिक, ऐतिहासिक, लोकप्रचलित अथवा घटित किंतु अदृष्ट तथा कल्पित या दृष्ट घटना को अपनी समकालिक चिंता के सामंजस्य में निरखता-परखता हुआ जिस नवीन सत्य को उपलब्ध करता है, उसी को अपनी अनुभूति का विषय तथा पर-संवेद्य बनाकर किसी काव्य-रूप में ढालता है. यही कवि (रचयिता) गत सत्य, रचयिता का अभीष्ट अर्थ और रचना का यथार्थ होता है. रचना में शब्दार्थ नहीं, शब्दार्थ का अतिक्रमण करके उसमें अंतर्हित सत्य अथवा रचयिता के अभीष्ट अर्थ को पालना ही सच्चे काव्यार्थ(रचनार्थ) को पा लेना है.

इस सत्य को दूसरों के लिए ग्राह्य. संवेद्य तथा संप्रेषणीय बनाने के लिए ही रचनाकार प्रबंध रचनाओं में वे सारी योजनाएं करता है, जिनकी चर्चा ऊपर की गयी है. प्रबंध काव्य (महाकाव्य, खंडकाव्य), नाट्य-रचना, उपन्यास तथा कहानी में इनका निर्वाह सुकर होता है, मुक्तक काव्य में दुष्कर. नाटय़ में विभाव (आलम्बन, उद्दीपन) भाव (स्थायी, व्यभिचारी/ संचारी, सात्विक), अनुभाव (कायिक, वाचिक, आहार्य) के अंतर्गत उक्त लगभग सभी बातें आ जाती हैं और उनका प्रत्यक्ष प्रदर्शन होता है. श्रव्य और पठ्य काव्य (साहित्य) रूपों में इनका वर्णन ही हो पाता है. उसमें भी श्रव्य काव्य में भावों का नाम लेना नहीं, उनकी दशा का प्रदर्शन ही वांछित है.

इन सबकी योजना कवि/कथाकार अपनी अंतर्दृष्टि से इस प्रकार करता है कि घटना और/अथवा पात्र के विषय में उसके अनुकूल-प्रतिकूल दृष्टिकोण, विचार या भाव का बिन कहे ही प्रेक्षक/पाठक/श्रोता को संकेत मिलता चले, साथ ही उसकी विश्वसनीयता बनी(और बढ़ती) रहे. विस्तृत जीवन पर आधारित रचनाओं में घटनाओं तथा पात्रों के चरित्र में अनेक परिवर्तन या उतार-चढ़ाव आते रहते हैं जिनसे बीच-बीच में भिन्न-भिन्न भावों और उनकी परिपुष्ट दशा में विभिन्न रसों की व्यंजना होती चलती है और कथा की परिणति अंततः रचनाकार किसी ऐसे रस से किया करता है जो सम्पूर्ण रचना में व्याप्त भाव (रचनाकार के उद्दिष्ट अर्थ) को उसके अंतिम

परिणाम के रूप में व्यक्त करता है. यही व्याप्त भाव और उसकी रसात्मक परिणति अंगीरस कहलाती है.

साहित्य के मूल में ही यह बात निहित है कि उसमें कही गयी बात 'सत्यं प्रिय हितं च' सिद्धांत की पूर्ति करती है. प्रकारांतर से साहित्य जीवनोपदेश ही होता है जो मानवीय सद्भाव और जीवन के सत्पक्ष को जगाता तथा व्यापक बनाता है. इस उपदेश को 'कांतासम्मित' बनाने में रस की भूमिका सर्वोत्कृष्ट है. अलंकार, रीति, वक्रोक्ति से निस्संदेह काव्य में सौंदर्य और उक्ति में चमत्कार आता है. गुण और औचित्य कथन को भावानुकूल तथा ग्राह्य बनाने और उचितानुचित विवेक से काव्य-साधना का नियमन करने में सहायक होते हैं, परंतु रस की-सी त्वरित संवेदना जगाने, रचनाकार के भाव को सहृदय प्रेक्षक/ पाठक/ श्रोता के हृदय में सहज संक्रमित करके उन दोनों के हृदय का तादात्म्य कराने, कुत्सित और विकारग्रस्त मनोभावों को पछाड़कर मन का परिष्कार करके मानवीय गुणों को जगाने और सर्वोपरि जीवन के द्वंद्वात्मक– सुख-दुख, राग-द्वेष, कलुष-निर्मलता, मैत्री-संघर्ष आदि– स्वरूप का बोध कराते हुए या शोक, भय, जुगुप्सादि दुखद एवं घृणोत्पादक स्थितियों को दिखाते हुए भी हमारे मन को उनमें संसिक्त, लिप्त अथवा उनसे विरत न करके एकाग्र किये रखने की जैसी अद्भुत क्षमता रस में है वैसी किसी और सिद्धांत में नहीं है.

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि :

१. http://www.navneethindi.com//**127**
२. साहित्य में रस का स्थान by आनंद प्रकाश दीक्षित
३. http://www.hindisamay.com/contentDetail.aspx?id=**720**&pageno=**1**
४. https://hi.wikipedia.org/wiki/